International Journal of Engineering, Management, Humanities and Social Sciences Paradigms (IJEMHS)
Volume 35, Issue 03 and Publication Date: 1st May, 2023
An Indexed, Referred and Peer Reviewed Journal
ISSN (Online): 2347-601X
www.ijemhs.com

प्राचीन भारतीय शास्त्रों में राज्य एवं राजा की अवधारणा : कौटिल्य के अर्थशास्त्र के विशेष संदर्भ में

कुन्दन कुमार
शोध छात्र, इतिहास विभाग, बी. एन. एम. यू., मधेपुरा, बिहार

सार

प्रारम्भिक ब्राह्मण साहित्य में राज्य निर्माण की संविदा परिकल्पना का संक्षेप में ही उल्लेख मिलता है। बौद्ध धार्मिक पाठ 'दिघ निकाय' में इसकी पहली संक्षिप्त और गहन प्रस्तुति शामिल है। इसके निर्माण की कथा से हमें रूसो की पूर्व–राज्य आदर्श स्थिति की याद आती है। बाद की स्थिति प्रकृति के होब्सियन विवरण के समान है। इस दंतकथा का उपयोग स्वयं बुद्धने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के दावे का खंडन करने के लिए किया है। यह मिथक बताता है कि एक समय था जब हर कोई दोषरहित, परिपूर्ण और सद्भाव और आनंद में रहता था।

विस्तार

यह समग्र और दोषरहित स्थिति बहुत लंबे समय तक बनी रही। लेकिन अंततोगत्वा पुरातन पवित्रता अधेमुखी होने लगी और इसका क्षय प्रारम्भ हुआ। स्त्री–पुरूष और वर्ण के भेद स्पष्ट होने लगा। संक्षेप में, स्वर्गिक जीवन पार्थिव जीवन में परिवर्तित हो गया। अब हरने की जगह, भोजन और पानी की जरूरत होने लगी। लोगों ने आपस में क्रमशः अनेक अनुबंध किए तथा परिवार और संपत्ति जैसी संस्थाएँ कायम कीं। लेकिन इससे नई–नई समस्याएँ पैदा हुई, क्योंकि चोरी और अन्य प्रकार के असामाजिक आचरण सामने आने लगे। अतः लोग इकट्ठे हुए, और तय पाया कि एक ऐसे व्यक्ति को प्रधान क रूप में चुना जाए जो 'सर्वाधिक समर्थित, सर्वाधिक आकर्षक और सर्वाधिक योग्य हो।' उन्होंने जोर दिया, तो आदमी सहमत हो गया कि जहां उसे क्रोध करना चाहिए वहां वह क्रोध करेगा, जहां उसे निंदा करनी चाहिए वहां निंदा करेगा, और जहां उसे निष्कासित करना चाहिए वहां निर्वासन करेगा। जनता उसे बदले में अपने पैसे का हिस्सा देने के लिए सहमत हुई। चुने गए उम्मीदवार ने तदनुसार (1) महासम्मत, (2) खटिया, और (3) राजा की

उपाधि धारण की। पहला उस व्यक्ति को संदर्भित करता है जिसे सभी ने चुना है, दूसरा जमींदार को, और तीसरा वह जो धर्म के माध्यम से आबादी को आकर्षित करता है, 'दीघ निकाय' के अनुसार। खिले हुए मंच की देन सामाजिक प्रगति की कॉफी है।यह दर्शाता है कि कैसे आदिवासी समाज पहले ही टूट चुका था और जातियों और वर्णों, पुरुषों और महिलाओं और विभिन्न आर्थिक वर्गों के लोगों के बीच विवाद थे। इन परिवर्तनों का संबंध पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार की बदलती हुई भौतिक संस्कृति से है। ईसा पूर्व चौथी सदी के आसपास खेती में लोहे के औजारों के उपयोग कारण अनाज की पैदावार बढ़ी और कृषक समुदायों की संख्या बढ़ी। पूर्वी भारत में धन अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार बना। यद्यपि सोनपुर (गया) के उत्खननों से ईसा पूर्व करीब आठवीं शताब्दी में पूर्वोत्तर भारत में धान की खेती का पता चलता है, फिर भी व्यापक रूप में इसकी खेती बुद्ध के काल में ही शुरू हुई। महत्वपूर्ण बात यह है कि 'दीघ निकाय' में धान के सिवा किसी दूसरे अन्न का जिक्र नहीं है। स्पष्ट है कि धान पूर्वी अंचल की मुख्य फसल थी। इस सृष्टिकथा से ऐसी धारण बंधती है कि झगड़े का एक मुख्य कारण यह था कि कुछ लोग अपने खाने से अधिक धान जमा कर लेते थे और इससे भी बुरी बात यह थी कि धानखेती की छीनाझपटी होती थी। इस प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति को राजा के चुनाव का प्रमुख कारण बताया गया है। दिघ निकाय की विचारधारा इस मायने में अनूठी है कि यह मानता है कि सामाजिक अनुबंध राजनीतिक अनुबंध से पहले स्थापित किया गया था फिर भी, यह एक सीमित अनुबंध की ब्राह्मणों की अवधारणा पर लागू नहीं होता है। दीघ निकाय सामाजिक अनुबंध के विकास को चरणों में दर्शाता है। यह पहले परिवार के विकास और मुक्त निजी संपत्ति के विकास को दर्शाता है। अन्य लोगों के परिवारों और व्यक्तिगत धान से चोरी करने से बचने की आवश्यकता केवल अंतर्निहित है, स्पष्ट रूप से नहीं कही गई है। हालाँकि, सामाजिक अनुबंध का विचार निर्विवाद रूप से राजनीतिक अनुबंध के विचार की तुलना में इस पुस्तक में अधिक विस्तार से वर्णित है।

दीघ निकाय में फलने–फूलने वाले राजनीतिक समझौते ने न केवल एक अलग तरीके से राजा बनने की आवश्यकताओं पर जोर दिया, बल्कि यह भी स्पष्ट

किया कि प्रत्येक पार्टी किसके लिए जिम्मेदार थी। ऐतरेय ब्राह्मण के विपरीत, जहां ऊर्जा और शक्ति जैसे लक्षणों पर जोर दिया जाता है, दिघ निकाय सुंदरता, लोकप्रियता, आकर्षण और क्षमता पर जोर देता है। सौंदर्यपूर्ण शारीरिक लक्षणों को हृदय और बुद्धि के गुणों द्वारा पूरक किया गया है। इसका स्पष्ट कारण बौद्धों की बलप्रयोग तथा हिंसाविरोधी प्रवृत्ति है। दुष्कृत्यों पर रोष प्रकट करके और उनकी भर्त्सना करके राजा अपनी नाराजगी व्यक्त करता है, लेकिन इस रोष और भर्त्सना के भाव को कार्यरूप में कैसे परिणत किया जाता है, यह नहीं बताया गया है। अपराधियों को देश निकाला देना एकमात्र ऐसा दंड है जिसका स्पष्ट उल्लेख हुआ है। इस तरह, कुल मिलाकर राज्य के प्रधान का दायित्व अपराधें को रोकना है। वह तभी हस्तक्षेप करता है जब लोग प्रतिष्ठित कानूनों का उल्लंघन करते हैं। राजा की उपाधियों की जो व्युत्पत्ति मूलक व्याख्या की गई है, उससे भी पता चलता है कि राजा से किन उत्तरदायित्वों के निर्वाह की अपेक्षा की जाती थी। खत्तिय उपाधि का अर्थ खेतों का मालिक बतलाया गया है, जिससे पता चलता है कि राजा का प्रथम कर्त्तव्य लोगों के खेतों की एक दूसरे से रक्षा करना है। फिर, इन उपाधि से यह भी भासित होता है कि भूमि पर राजा को जो अधिकार प्राप्त है वह इस कारण कि वह समुदाय का, जो वैदिक काल में भूमि का स्वामी माना जाता था, प्रतिनिधि है। भूमि पर प्रभावकारी राजकीय स्वामित्व का प्रथम संकेत प्राक् मौर्य काल में प्राप्त होता है। इस युग के प्रारंभिक पाली दस्तावेजों में पूर्वोत्तर भारत में ब्राह्मणों को भूमि रियायतें देने वाले शासकों का उल्लेख है। इन अनुदानों को ध्यान में रखते हुए, यह दावा किया जा सकता है कि राजा और आम जनता के बीच एक समझौता है जो देश के शासक वर्ग के उच्च–जन्मे सदस्यों की एक छोटी संख्या के विशेष अधिकारों को सीमित करता है। राजा शब्द का अर्थ इंगित करता है कि प्रजा को लुभाने और संतुष्ट करने का उनका स्पष्ट दायित्व था। फिर भी, यह निर्दिष्ट नहीं किया गया है कि उसे विषयों से अपील करने और उन्हें संतुष्ट करने के लिए क्या करना चाहिए। इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है, तब भी नहीं जब यह राजा और उसकी प्रजा के साझा दायित्वों की बात आती है।

जबकि राजा के कार्य असंख्य हैं, प्रजा की केवल एक जिम्मेदारी का उल्लेख किया गया हैः राजा को अपने धान का एक हिस्सा देना। कर की दर नहीं दी गई है, लेकिन आधुनिक बौधायन धर्मसूत्र इंगित करता है कि राजा को अपनी उपज का छठा हिस्सा लेकर बदले में लोगों की रक्षा करनी चाहिए। इस अर्थ में, मौर्य–पूर्व ब्राह्मण परंपरा के चितकों में यह अवधारणा व्यापक थी कि राजा को प्रजा से कर

प्राप्त करने के बदले में प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। फिर भी, यह स्पष्ट नहीं है कि यह आइटम बौद्धों से ब्राह्मणों को या ब्राह्मणों से बौद्धों को पारित किया गया था या नहीं।

हमें पता चलता है कि पहले एक ही क्षत्रिय होता है जो आम लोगों के साथ सहमत होता है, लेकिन बाद में, पूरे क्षत्रिय समुदाय को पहले दल में शामिल कर लिया जाता है। खटिया मंडल, या क्षत्रिय सामाजिक वर्ग, दिघ निकाय निर्माण मिथक के समापन पर विकसित होने का दावा किया जाता है। अतः यहाँ जो चित्रित किया जा रहा है, वह सामान्य जनता और मूल क्षत्रिय सम्राट के बीच साधरण समझौता मात्र नहीं है।, बल्कि यह एक ओर क्षत्रिय कुलतंत्र में समाविष्ट शासक वर्ग और दूसरी ओर गैर क्षत्रिय जन सामान्य के बीच का करार है। इसका स्पष्ट उद्देश्य बुद्ध के काल में पूर्वोत्तर भारत में प्रचलित अल्पतंत्राों (ऑलिगार्कीज) के शासन को जनसमर्थन का जामा पहनाकर और इस प्रकार लोगों द्वारा नियमित रूप से करों की अदायगी के कर्तव्य का विधान करके उनका औचित्य ठहराना और उनकी जड़ें मजबूत करना था। बौद्ध अनुबंध सिद्धांत की विशेषता है कि ब्राह्मणवादी शांतिपर्व या रूसो के लेखन के विपरीत, यह एक व्यत्ति को राज्य के नेता के रूप में नामित नहीं करता है, बल्कि उन सभी व्यत्तियों पर विचार करता है जो शासक प्रकार में राजा होने के लिए फिट होते हैं।

'दीघ निकाय' में शासक पर डाले गऐ दायित्वों को देखकर हम सोच सकते है कि ये उस काल के गणतंत्रात्मक आदर्शों के तथा सामाजिक और धार्मिक विषयों में बौद्धों के सुधारवादी दृष्टि के अनुरूप हैं। लेकिन घोषाल का यह कहना ठीक ही है कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिलता कि इस सिद्धांत के सहारे राजकीय शक्ति पर किसी प्रकार का लोकनियंत्रण होता था। इसके विपरीत, जनसामान्य के अशांत और दयनीय जीवन के लंबे वृत्तांत का प्रयोजन बुद्धकालीन क्षत्रिय शासन का—चाहे वह राजतंत्रात्मक रहा हो या कुलतंत्रात्मक—औचित्य ठहराना था। बाकी पुस्तकों में कहा गया है कि राजा धर्म के अनुसार कार्य करे, लेकिन राजशक्ति पर नियंत्रण अनुबंध सिद्धांत का प्रत्यक्ष अंग नहीं है। एक स्थल पर कहा गया है कि राजा धर्म के अनुसार लोगों को प्रसन्न रखता है। 'दीघ निकाय' के वृत्तांत के अंत में बताया गया है कि खत्तिय मंडल अर्थात शासक कुलतंत्र का उद्भव धर्म, न्याय या सदाचार के अनुसार हुआ। इस प्रकार प्लेटो के 'रिपब्लिक' की तरह राज्य की अवधारणा धर्म या न्याय की भावाना के प्रतिफल के रूप में की गई है।

ब्राह्मण विचारधारा के अनुसार, कौटिल्य का अर्थशास्त्र वह है जहाँ राज्य की नींव के अनुबंध सिद्धांत को सबसे पहले स्पष्ट रूप से समझाया गया है। ब्राह्मणों के सामाजिक प्रभुत्व के विनाश के संबंध में इस थीसिस को दीघ निकाय में अनजाने में कैसे विकसित किया गया था, यह शाही शक्ति की प्रकृति के विषय में सचिवों के बीच बातचीत के बाद अर्थशास्त्रा में अनायास ही विकसित हो गया था। इसे राज्य के सात भागों की सैद्धांतिक व्याख्या के समान एक सुविचारित और पूर्वकल्पित सिद्धांत सूत्रीकरण के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है। साथ ही, कुछ नए खंड जो अनुबंध के लॉन्ग बॉडी में नहीं थे, जोड़े गए हैं। यह दावा करता है कि अराजकता के समय में, जनता ने मनु वैवस्वत को अपने शासक के रूप में चुना और उन्हें अपने अनाज उत्पादन का छठा हिस्सा, उनकी बिक्री योग्य वस्तुओं का दसवां हिस्सा और उनके धान का एक हिस्सा देने का वचन दिया। इन शुल्कों के बदले में, उसने जनता से वादा किया कि वह दुष्ट गतिविधियों का अंत करेगा, अपराधियों को जुर्माने और जुर्माने से प्रताड़ित करेगा, और इस तरह सामाजिक कल्याण को आगे बढ़ाएगा। इसके अलावा, यह अनिवार्य था कि वन निवासी वन उत्पादन का छठा हिस्सा छोड़ दें। यह कहावत जो कहती है कि राजा को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए, राज्य के निर्माण के इस इतिहास का समापन करता है।

इस तथ्य के बावजूद कि बाद के वैदिक संहिता और ब्राह्मण लेखन कई बलिदानों और विधानों के लिए एक सैद्धांतिक औचित्य प्रदान करते हैं, राज्य को न तो वैदिक साहित्य में परिभाषित किया गया है और न ही सबसे पुराने कानूनी ग्रंथों, धर्मसूत्रों में। उस समय राज्य संस्था का ठीक से गठन नहीं किया गया था, यही कारण है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इसे पहली बार बुद्ध युग में कोशल और मगध सा जैसे सुव्यवस्थित राज्यों की स्थापना के बाद सात अंगों से बनी संस्था के रूप में वर्णित किया गया था। बाद की परिभाषाओं ने इस अवधारणा को एक मॉडल के रूप में इस्तेमाल किया। सोलहवीं शताब्दी ईस्वी में सरस्वती विलास नामक एक ग्रंथ के लेखक ने गौतम धर्मसूत्र से उद्धृत करके इस सिद्धांत के सूत्रीकरण का श्रेय गौतम को दिया। 2 वास्तव में, हालांकि, इस तरह के लेखन अपने स्रोत की पहचान करने में असमर्थ हैं और हालांकि कुछ अंगों का उल्लेख किया गया है, कौटिल्य वह है जो हमें राज्य की पूरी अवधारणा देता है।

कौटिल्य ने जिन सात अंगों का उल्लेख किया हैः वे हैं, स्वामी, 'अमात्य', 'जनपद', 'दुर्ग', 'कोश', 'दंड', 'और 'मित्र'।[4] राज्य व्यवस्था संबंधी अधिकांश ग्रंथों में इन सातों अंगों का उल्लेख मिलता है[5], यद्यपि कुछेक में कुछ अंगों के भिन्न पर्यायों

का प्रयोग हुआ है। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' में, जो ईसा की करीब पांचवी शताब्दी की रचना है[6], स्वामी और अमात्य के बदले क्रमशः साम शांतिस्थापन और दान नामक दो नए अंगों का उल्लेख है।[7] किन्तु ध्यातव्य है कि यह उल्लेख अंतः राज्य संबंधों के संदर्भ में किया गया है और इस अंतर का कारण भी शायद यही है। स्पष्ट है कि इन दो अंगों का आपस में मेल नहीं बैठता, और इसमें कोई संदेह नहीं कि कौटिल्य ने राज्य की जो सप्तांग परिभाषा दी है उसे करीब–करीब सभी लेखकों ने राज्य के प्रामाणिक गुणनिर्देश के रुप में स्वीकार किया है।

'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' में भी अन्यत्रा सही परिभाषा उद्धृत की गई है।[8] हां, शांतिपर्व की कुछेक पांडुलिपियों में एक अंतर मिलता है। इस पर्व के समीक्षित संस्करण[9] में 'अष्टांगिक राज्य' शब्दपद का प्रयोग मिलता है, लेकिन आठवें अंग का उल्लेख कहीं नहीं है।

अर्थशास्त्र में दो अंगों, अमात्य और दुर्ग की परिभाषा प्रदान नहीं की गई है, इस तथ्य के बावजूद कि सभी अंगों को कवर किया गया है। इन दोनों को अलग–अलग कवर किया गया है। हालांकि कुल मिलाकर, यह सप्तांग की एक सांगोपांग और व्यवस्थित समझ है, जो अन्यत्र असामान्य है। हालांकि बाद के लेखों में अर्थशास्त्र से इन घटकों की परस्पर क्रियाओं के बारे में अलग–अलग बातें कही गई हैं, इसके परिणामस्वरूप कौटिल्य की परिभाषा में महत्वपूर्ण बदलाव नहीं आया है। अतः सप्तांग का विश्लेषण करने के लिए हमें कौटिल्य की परिभाषा पर निर्भर रहना चाहिए।

स्वामी एक नेता या भगवान को दर्शाता है। कवज के सभी कार्य केवल इसी रूप में इसका संदर्भ देते हैं।[10] राजा पर आने वाली त्रासदियों को ध्यान में रखते हुए, कौटिल्य वैराज्य की कमियों का भी हवाला देते हैं, यानी एक राजाविहीन राज्य, यह सुझाव देते हुए कि राजा की उपाधि राजशाही और गणतंत्र दोनों के शासक के लिए लागू की गई है।[11] जहां तक पुरालेखों का संबंध है, 'स्वामी' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम शक अभिलेखों में हुआ है। ध्यान देने की बात है कि सप्तांग सिद्धांत के प्रतिपादन के परिवेश में राज्य के प्रधान के लिए किसी भी ग्रंथ में राजा शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है इसके बजाय स्वामी[12] शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है अधिपति। जैसा कि कौटिल्य को वाक्यांश गढ़ने का श्रेय दिया जाता है, यह अर्थशास्त्र में प्रस्तुत अन्य अवधारणाओं के संदर्भ में सबसे अच्छी तरह से समझा जाता है। इस वाक्यांश के प्रयास राज्य के प्रमुख के आधिपत्य पर जोर देते हैं, क्योंकि कौटिल्य जिस व्यवस्था का वर्णन करते हैं, उसके तहत राज्य के प्रमुख को

बहुत उच्च पद दिया गया है। अर्थशास्त्र में आत्मनिर्भर विशेषताओं का कुछ विस्तार से वर्णन किया गया है। उनका मानना था कि स्वामी के पास महान, बुद्धिमान, उत्साही और व्यक्तिगत गुण होने चाहिए। कुलीन नैतिकता पर जोर सामान्य कुलों में जन्म लेने वाले किसी भी व्यक्ति के राजशाही बनने की संभावना को समाप्त कर देता है।[13]

संदर्भ

1. काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्राज, *i*, 413
2. वही, *iii*, पा. दि. 20.
3. शूद्राज, पृ 83–84,
4. अ. शा. *VI 1.*
5. मनु *IX*, 294 शां. प., 69.62–63, संघटित पाठ में 'सप्तात्मकंराज्यम्' शब्द पद का प्रयोग हुआ है विष्णु *II* - 33 याज्ञ 1–353 श्ज्ञु. नी. सा. प.61, जगदीश लाल शास्त्री की पुस्तक पॉलिटिकल थॉट इन दि पूराणाज, पृ. 48 में अग्निपुराण का उदारण, पूर्वोदृध्त पुस्तक, पृ 115 पर का.प. उदारण, पूर्वोद्ध पुस्तक, पृष्ठ 23 का मार्कण्डेय पृ. का उद्ाहरण
6. आर. सी. हजरा, स्टडीज इन दि उपपुराणाज, प, 111.212.
7. ज. ला. शास्त्री की पूर्वोद्धृत पुस्तक, पृ. 163 पर उद्धृत अंश
8. वही, पृष्ठ 153
9. 122–81
10. अ. शा. प. *VI-I* मनु, *IX* . 294 विष्णु *III*- 33 शां. प. 69–62, 63, याज्ञ, 1–353.
11. अ. शा. प. *VIII.2.*
12. किंतु शा. प., 69–62 में 'आत्मा' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका मतलब 'राजा' है।
13. 'अभिगामिकागुणाः, प्रज्ञा–गुणाः उत्साहगुणाः– और 'आत्मसंपत्' अ. शा. प.,*VI-1.*